

बदलने होंगे आर्थिक विकास के मायने

कामगारों के कल्याण की अनदेखी से बढ़ता दुष्चक्र

इस अवधारणा को भी बदलना होगा कि कामगारों के पास कोई काम होना, किसी तरह का काम न होने से बेहतर है

आम तौर पर आर्थिक विकास को राजस्व में वृद्धि और औद्योगिक इकाइयों को मुनाफे के आधार पर परिभाषित किया जाता है। कामगारों के हितों का चिंतन करने वाली अवधारणा कहीं नहीं देखी जाती। कोरोना की दूसरी लहर की भयावहता के बाद अब तीसरी लहर को लेकर भी अनिश्चितता है। ऐसे में आर्थिक विकास के मायने भी नए तरीके से परिभाषित किए जाने चाहिए।

महामारी से निपटाने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में समग्र समाज को संगठित रूप से जब तक नहीं देखा जाएगा तब तक इसे अधूरा ही माना जाएगा। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पिछले दिनों जी-7 शिखर सम्मेलन में 'एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य' का मंत्र दिया है। साथ ही महामारी से निपटने के लिए अंत्योदय की अवधारणा, जिसमें निर्धनतम नागरिक केंद्रबिंदु होता है, को अपनाने पर जोर दिया है।

चिंताजनक तथ्य यही है कि कोरोना महामारी के दौर में ही कामगारों की दयनीय हालत सामने आ पाई और उनकी परिस्थितियों में सुधार की जरूरत महसूस की गई। संतोष यह है कि दूसरी लहर कमजोर पड़ने पर कामगारों को फिर से पूरा या आंशिक रोजगार मिलना संभव हो पा रहा है। लेकिन कुछ सवालों पर विचार करना जरूरी है: पहला यह कि किसी भी देश में आर्थिक विकास का उद्देश्य आखिर क्या होना चाहिए? क्या ऐसा आर्थिक विकास उचित है जहां सिर्फ कुछ लोगों को फायदा पहुंचने से आर्थिक असमानता का जन्म हो? दूसरा सवाल यह कि क्या एक कामगार के पास किसी भी तरह का काम होना ही काफी है? क्या काम की गुणवत्ता को मापने के कुछ मापदंड नहीं होने चाहिए? तीसरा यह कि क्या उस देश में जहां सकल घरेलू उत्पाद खपत आधारित है वहां औद्योगिक विकास ही कामगार कल्याण की दिशा में पहला कदम होता है? इन सवालों को सम्पूर्णता से समझना व हल करना जरूरी है। साथ ही

में हमारे आर्थिक विकास के मायने बदलने की भी जरूरत है। कामगार कल्याण दूसरी प्राथमिकता के रूप में ही देखा जाता है। इसी से विकास की त्रुटिपूर्ण अवधारणा का जन्म होता है।

दरअसल, सीमित संसाधनों की दुनिया में जब तक विकास की सीमाओं को परिभाषित नहीं किया जाता है, तब तक समानता व न्याय के सिद्धांत तक नहीं पहुंच सकते। आर्थिक विकास का मूल मकसद समाज के अंतिम व्यक्ति के लिए सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करना होना ही चाहिए। इस अवधारणा को भी बदलना होगा कि कामगार के पास किसी भी तरह का काम होना, कोई काम न होने से बेहतर है। यह अवधारणा ऐसे दुष्चक्र को जन्म देती है जहां पहले कामगारों के हितों के अभाव वाली व्यवस्था बनती है और फिर उसकी गुणवत्ता बढ़ाने के प्रयास किए जाते हैं। जबकि होना यह

चाहिए कि शुरू से ही कामगारों के हितों के मापदंडों पर खरी उतरती व्यवस्था बनाई जाए।

सरकार के औद्योगिक कल्याण प्रयासों को कामगार कल्याण की पहली सीढ़ी मानना भी उचित नहीं। कामगारों की समस्याओं को उद्योगों के जरिये दूर करने से कामगारों के अधिकारों के न्यूनतम मानकों की प्राप्ति ही सरकार व उद्योगों के लिए एक उपलब्धि बन जाती है। क्या ऐसी व्यवस्था किसी कामगार को लम्बे समय के लिए सम्मानजनक जीवन दे सकती है? होना यह चाहिए कि कामगार कल्याण और उद्योग कल्याण का सहअस्तित्व कायम हो ताकि कामगार कल्याण, उद्योगों की प्रगति का कारक बन सके। सीधे तौर पर यह मानना चाहिए कि कामगार कल्याण कोई आर्थिक एजेंडा या दान नहीं है और न ही सरकार के लिए कोई चैक-लिस्ट। यह तो समाज व सरकार की सामूहिक जिम्मेदारी है। इसके लिए कामगारों के स्वास्थ्य, कौशल विकास व शिक्षा तंत्र को मजबूती देने की जरूरत है।

(सहयोग: प्रशांत टाक व सार्थक शुक्ला)



प्रदीप मेहता

लेखक 'कट्स
इंटरनेशनल' से जुड़े हैं

@patrika.com